उत्तर-आलोचना सिद्धांतिकी

अमर सिंह
(शोधार्थी)
डॉ. सीमा चन्द्रन
(शोध-निर्देशक)
सहायक आचार्य
केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय तेजस्विनी हिल्स, कासरगोड-671325
seemachandran@cukerala.ac.in Mob- 9447720229

भूमिका- *विश्व में कोई भी 'पाठ', 'वस्तु', 'पदार्थ' स्वयं में गलत नहीं हैं, बल्कि उन्हें, गलत या सही, अपनी समझ, व मनुष्य और अन्य जीवों के, बौद्धिक-पाठ बोध के आधार भर में, कभी-कभी स्वा, अहं, समाज व राजनीतिक हित व हानि के कारण समाज द्वारा, तो कभी पदार्थ, वातावरण और वैश्विक राजनीति के हानि-लाभ, दाँव-पेंच के कारण राष्ट्रीय शासनों दारा, किया जाता है। क्या, कब, कहाँ, किस प्रकार, कहाँ तक, किस विधि में गलत होता है और कैसे उसे हम गलत मान लेते हैं आदि बातों के व्याकरण को उत्तर-आलोचना सिद्धांतिकी अपने प्रयोगिक नियम में स्पष्ट करती है। इसलिए यह सिद्धांतिकी आलोचना के क्षेत्र में एक प्रयोगिक सिद्धांतिकी है। जो आलोचना-व्याकरण को पूर्ण बनाती है तथा पाठ को कई सिद्धांतिकियों में खोल कर सम्पूर्ण जगत की चिंतन-मीमांसा के दर्शन की भाषिकी को सुलझाती है, तार्कि सभी प्रकार का पक्षीय सत्य सबके सम्मुख रखा जा सके। अर्थात ये पाठ किस विधि व किस ज्ञान स्तर के अधिक और कम होने के कारण गलत और सही किए जाते है, यही इस प्रयोगिक सिद्धांतिकी का मूल व्याकरण है।*

बीज शब्द : *उत्तर-आलोचना, आलोचना, रचनाकार, आलोचक, नानावाद, नानासिद्धांतिकियाँ, आलोचना-व्याकरण, आलोचना-तकनीकि, राजनीति, पाठ-व्याकरण, व्याख्यासमीकरण, पदार्थ, विखंडन, उत्तर-आधुनिकता, नानाविमर्श, यथार्थिता, बहुलार्थी, राष्ट्रीय शासन, पर्यावरण।*

उत्तर-आलोचना का अर्थ : उत्तर-आलोचना का अर्थ और तात्पर्य, किसी एक पाठ, वस्तु, पदार्थ, वर्ग, समाज को, अनेकों दृष्टि-दर्शनों में विश्लेषित करने से है। उत्तर-आलोचना एक नवीन, समाज और साहित्यालोचना सिद्धांतिकी है। जो अभी तक समाज और साहित्य में भाषा-पदार्थ-विधि के रूप में उपस्थित होकर भी मानव मस्तिष्क से भाषा अर्थ-वस्तु में उपस्थित नहीं थी।

उत्तर-आलोचना का दर्शन : यदपि अब तक लगभग जितने भी धर्म-दर्शनों की निर्मिति हुई है, उन सभी में मनुष्य और मानवता, अहिंसा आदि ही इन सबके केंद्र में रहें है, मनुष्यता से परें जितने भी विभाग हैं, उनकी ओर कोई भी दृष्टि व्याकरण-धर्मी नहीं गया। वे अपनी अहमता में यह नहीं निश्चित कर पाते की ईमानदारी, अहिंसा, मानवता, चरित्रता आदि सभी कहीं न कहीं बाजार के ही आयाम है, अर्थात मात्र मनुष्यता और मनुष्यता से संबन्धित अन्य आवश्यकतायें इन्हीं से पूर्ण नहीं हो जाती। क्योंकि संसार में मात्र मनुष्य को ही यह ज्ञात है कि मानवता क्या है और उससे कैसा संसार निर्मित किया जा सकता है, किन्तु अन्य जीवा तथा पर्यावरण आदि को मानवता की कोई जानकारी नहीं है, और मनुष्य इनसे और इसके केंद्र में है, वह कभी भी इसन्से बाहर नहीं जा सकता, इस लिए उसे न मात्र नायक बने रहने की आवश्यकता है, बल्कि खलनायिकता को भी इन्हीं मानवता के संस्कृति में लाना है। यदि बौद्ध, जैन व गाँधीवाद के व्याकरण में विश्व-समाज बंध जाएगा, तो अन्य पशुओं की संख्या के दबाव से मानव जाति स्वयं समस्या में फंस जाएगी। इसलिए पाठों आदि को अन्य विषयों-दृष्टियों में रख कर को देखना पारा आवश्यक है। इसलिए 'उत्तर-आलोचना', : 'आलोचना' को यह कहते हुये चुनौती देता व लज्जित करता है कि 'आलोचना' किसी एक समाज-दर्शन : दृष्टि से, किसी दूसरी समाज दृष्टि से लिखे गए 'पाठ' को देखता है और उसे 'हेराफेर' फौरी या 'घोलू' नियमावाली में सही-गलत रूप में स्थिर व चिन्हित कर देता है। किन्तु उत्तर-आलोचना इस बात का दावा करती है, कि किसी भी दृष्टिकोण से लिखा गया 'कोई पाठ स्वयं में गलत नहीं होता' बल्कि वह 'दूसरी दृष्टि या आलोचना सिद्धांतिकी की कुंजी से' 'गलत' किया जाता है। जैसे रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी को भारतीय संस्कृति और भारतीय राष्ट्रवाद या सनातन के समाज दर्शन से देखेते हैं तो 'तुलसीदास उसके व उनके समाज के लिए बहुत विशिष्ट हो जाते हैं, किन्तु यदि रामचन्द्र शक्ल कबीर को उसी दृष्टि से देखें तो बहुत कुछ गलत हो जाएगा। 'कबीर' सनातन के लिए 'तुलसी' के रूप के कभी नहीं बन सकते। किन्तु जैसे ही रामचन्द्र शुक्ल 'कबीर' को मार्क्सवाद के वर्ग दर्शन से देखेंगे, कबीर अपने आप विशिष्ट हो जाएँगे, और 'तुलसी' का उनके लिए कोई बड़ा महत्व नहीं रहेगा। इसी प्रकार यदि कबीर या तुलसी को अन्य सैकड़ों समाज-दर्शनों : दृष्टियों से देखा-खोला जाय तो अन्य बहुत से अर्थ निकाल कर हमारे सम्मुख आएंगे। तात्पर्य यह कि कोई गलत नहीं है, बल्कि वह ज्ञान और समाज-दर्शन से उसे गलत कर दिया जाता है, अपने स्तर में सब सही है। ठीक इसी प्रकार हम यहाँ 'राम' पर एक उत्तर-आलोचनीय प्रयोग करेंगे और देखेंगे कि एक राम को कितने रूप-अर्थ में देखा जा रहा है। किन्तु यदि कोई चाहे तो 'श्रीरामचारितमानस' तुलसी, कबीर, सूर, गोदान और अन्य कथा-कहानियों पर भी इसका प्रयोग कर सकता है। जैसे कि हमने यहाँ 'राम'

दृष्टियां	पाठ	निष्कर्ष
व्याख्या	राम	'राम' मानव मुख 'ध्वनि' और 'वर्तनियों' से निर्मित एक शब्द है।
हिन्दुत्ववाद		'राम' भगवान है।
मार्क्सवाद		'राम' पूंजी स्थापक और शोषण का जनक है। (देखिये भाषा-शैली भी यहीं से परिवर्तित हो रही है, यह भाषा शैली परिवर्तन ही राम के प्रति अन्य सह-पदार्थों की निर्मिति करता रहता है)
अस्तित्ववाद		'राम' अस्तित्व के जनक है।
संरचनावाद		'राम' एक निर्मिति है। (यहाँ भी शैली परिवर्तित होती है)

उत्तरसंरचनावाद	'राम' मात्र राम नहीं है। (यहां भी शैली परिवर्तित होती है)
विखण्डनवाद	'राम' एक वैश्विक पदार्थ है। (यहां भी शैली परिवर्तित होती है)
उत्तराधुनिकतावाद	'राम' एक सामाजिक वर्ग है, जिससे परे या अपरे रहा जा सकता है। (यहाँ भी शैली परिवर्तित होती है)
नव्य-इतिहासवाद	हम 'राम' से सदैव तक संबन्धित है। (यहां भी शैली गैर -परिवर्तित होती है)
नाना-विमर्श (दलित, स्त्री, किसान, सैनिक, वृद्ध, बेरोजगार	'राम' क्या है, कोई 'राम' नहीं है, राम एक शोषण का मिथ-पदार्थ है। (यहाँ भी शैली परिवर्तित है)
जैव रचनावाद	हम सब 'राम' है।
सांस्कृतिक-भौतिकवाद	'राम' मानव-वर्ग द्वारा निर्मित एक पुष्टि-पोषणीयता है। जो सामाजिक बाजार को केन्द्रित करती है। (यहाँ भी शैली परिवर्तित है)
बाजारवाद	'राम' एक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व अन्य सामाजिक आयामों का ब्रांड है। (यहाँ भी शैली परिवर्तित है)
लोकवाद	'राम' जगत के पालनहार है।
निगमवाद	'राम' एक अच्छा पदार्थ है। (यहां भी शैली परिवर्तित है)
राष्ट्रवाद	'राम' एक कुशल सैनिकराजा थे।
फासीवाद	'राम' फासीवाद के प्रेणता है।
अहिंसावाद	'राम' हिंसा के जनक है।
शक्तिवाद	'राम' अहं के जनक है।
तकनीकिवाद	'राम' बौद्धिक तकनीकर है।
सत्तावाद	'राम' सत्तावाद के प्रेणता है।
मानवता	'राम' दंभी पुरुष है।
जैव-प्रौद्योगिकी	'राम' में सामाजिक संकर स्थिति के पदार्थ है।
अभिव्यंजना	'राम' अभिव्यंजनाशील नहीं है। वे तत-उत्तरी नहीं है।
रसवाद	'राम' पदार्थ-जगत है। (यहाँ भी शैली और अर्थ भाव दोनों के परिवर्तित है समयानिर्भर है।)
भूगोलवाद	'राम' वातावरण ज्ञानी नहीं है। (यहां भी शैली परिवर्तित है)
रसायनवाद	'राम' शारीरिक और वातावरणीय सामंजस्यी पदार्थ नहीं है।
दादावाद	तब ये 'राम' क्या है, जब वह मेरे सम्मुख नहीं है। (यहां भी शैली परिवर्तित है)

इस सारणी के आधार में हमने देखा कि एक मात्र 'राम' के कितने अर्थ और कितने प्रकार की धारणायें व अवधारणाओं में अपने-अपने बौद्धिक सामाजिक, दार्शनिक, राजनीतिक, वातावरणीय तथा अन्य अनेकों प्रभावों के स्तर से 'राम' को विश्लेषित किया गया, सामान्यतया यहाँ मात्र कुछ छोटी-छोटी मूल भाव रखें हैं। यदि इसे विष्टरित रूप में रखना-देखना हो तो आप विस्तार से भी लिख सकते हैं।

तात्पर्य यह कि कोई भी स्वयं में असत्य व गलत नहीं है, जैसे कि न 'कबीर' गलत है न 'तुलसी' न 'हिटलर' न 'औरंगजेब' न 'उपनिवेशवादी' न 'निगमवादी' न 'मोदी' न 'रावण' न 'स्त्री' न 'दलित' न 'वर्ण-सवर्ण' बल्कि उसे गलत कराया जाएगा, बौद्धिक-समझ के आधार में, उदाहरणतः यदि पुनः देखें तो दलित, मार्क्सवादी, नारीवादी, आदर्शवादी आदि, 'कबीर' को उचित मानते हैं, पूँजीवादी, बाजारवादी, भूमंडलियक कबीर को व्यापारी। पर्यावरणवादी उन्हें 'शुद्ध अगतितचर' प्राणी। समाजशास्त्री उन्हें 'गतितचर' व भारतीय सामंती उन्हें 'बदमाश-कुकुर' आदि। दसरी ओर कुलीन-सामंतवादीयों के लिए तुलसी महान हैं, व वहीं दलिताई उन्हें 'तोताचारी' मानते हैं। रणनीति और तानाशाहियत के लिए 'हिटलर' अनुकूल है। इस्लामियों के लिए 'औरंगजेब' देव है। 'उपनिवेशवाद, उत्तर-उपनिवेशवाद व निगमवाद' वैश्विक-व्यापार के लिए एक धन का बहुलकीय गणितीय-व्याकरण है। हिन्द समाज के लिए 'नरेंद्र मोदी' एक 'दर्लभ महानतम जीवित मूर्ति'। उपले 'सामंतवाद' के लिए 'कबीर' प्रतिते (बिगाड़) है। दलिताई के लिए तुलसी और ऐसे ही अन्य। ठीक इसी प्रकार आज पूरे विश्व में हजारों की संख्या में संघ और समूह है। ऐसे ही अनेक सिद्धांत, सिद्धांतिकियाँ व दृष्टियाँ जो एक दसरे के सकल विपरीत व गैर-विपरीत अर्थ पैदा करती हैं, अर्थात यह कि जब समाज की निर्मिति विपरीत व गैर-विपरीत दुख और सुख, वातावरण की स्थिति के व्याकरण में निर्मित है तो विचार एक समान कैसे हो सकते हैं और वहीं कोई भी समुदाय और उनकी समझ एक साथ निश्चित समय से नही चले हैं। तब सबमें समान गति और 'समान बौद्धिक अर्थ' कैसे हो सकते हैं। अभिव्यक्तियाँ और मर्म-चित्र शक्तियाँ आयु के आधार में भी निकलती हैं और अपनी प्रक्रिया पूरी करती हैं। इसलिए हमें किसी एक बिन्दु, पाठ, व्यक्ति, पदार्थ, वस्तु, तत्व, समय को अनेक दृष्टियों में रख कर देखना होगा। किसी एक को पूर्ण व महान मान कर नहीं। तभी वह उचित होगा। इसलिए उत्तर-आलोचना सिद्धांतिकी यह संकेत देती है कि तुलसी, कबीर, औरंगजेब, हिटलर, मोदी, योगी आदि को जब सदैव से पचास दृष्टिय-दर्शनों में देखने की आवश्यकता है, ताकि आलोचना को हम वैज्ञानिक रूप दे सकें।

इसे अन्य अर्थ में यदि कहें तो कह सकते हैं कि जैसे स्त्री-विमर्श को पुरुष-विमर्श गलत कह सकता है और पुरुष-विमर्श की दार्शनिकता में स्त्री-विमर्श गलत सिद्ध भी हो जाएगा। उसके मानने वाले भी हजारों की संख्या में होने लगेंगे, क्योंकि कोई भी दर्शन, विचार, दृष्टि, सिद्धांतिकी, समाज, समूह, संघ, पाठ, बिन्दु, पदार्थ आदि 'व्यक्ति व वातावरण' के कर्म-क्रिया में पहले से ही विद्यमान है। पनपती और जन्म, वह अवसर पाकर हैं, तथा अपने बल के आधार-शक्ति में वह दूसरे को प्रभावित करती चलती है, और यदि वहाँ उसके वातावरण के लोग अधिक संख्या में हैं, तब उसका चारित्रिक बल और अधिक बढ़ जाता है। 'अबली' दृष्टि के पाठ व समूह को वह नष्ट कर देती है। प्रत्येक पाठ व्यापार-कर्मवश निर्मित किया जाता है। (व्यापार केवल धन के लिए ही नहीं होते बल्कि समाज व यस के भी व्यापार होते है, भारत में पृथ्वीराज, तुलसीदास, औरंगजेब, हिटलर, उपनिवेशवादी, निगमवादी, नरेंद्र मोदी ऐसे ही समाज-व्यापार के उदाहरण हैं।) जब उस पाठ के वातावरणीय-बल का समाज विलुप्त होने लगता है, तब वैसे ही वह पाठ, समूह, संघ, पदार्थ, वस्तु दृष्टियों की दृष्टि में आकर क्षीण की जाने लगती या करवाया जाने लगता है।

इसी प्रकार यदि 'योगी आदित्यनाथ' जी आदि जैसे मंत्रिज्ञ अवैध घर ढहवा सकते है तो यह राजनीतिक रूप से सही है। लेकिन वातावरण के आधार में जो पदार्थ लगाए गए जो व्यक्ति और मजदरों के द्वारा बल एवं धन निवेशित किया गया था। जो बिना पर्यावरणक्षेय के नहीं बन सकता और जो कलाकारी उसमें की गई थी। वह तो पर्यावरण, भौतिकता (वस्तुओं का लगाना) जलविज्ञान (शुद्ध पानी) और कलाकारवाद की दृष्टि से गलत हो गया, इस आधार में देखा जाय तो मंत्रिज्ञता उनकी गलत हो गई। राजनीति इतनी बड़ी नहीं है जितना पर्यावरण रक्षण बड़ा है, जल जो जीवन है आज के समय में। उससे हरजाना लिया जाय जिसने अवैध कार्य किए, और उससे बड़ा हरजानामंत्रिज्ञ से लिया जाय जिन्होंने पर्यावरण, वस्तुओं का मूल्य, जल की वास्तविकता नहीं समझी। 'पदार्थ' पर्यावरण की वस्तु है न की विधि की। वह जब विधि की निगरानी में रखी जाने लगती है, तभी समय से उसके 'अन्तः-वातावरण' में एक द्वंध बनता और वह पदार्थ राजनीति या किसी अन्य पाठ द्वारा अपनी ओर खींचा जाने लगता है।

वह तनाव में आता है। वह युद्ध का तत्व बनने लगता है। राजनीति अपने पाठ में उसे खींच लेती है, उसकी हत्या करती है। वह भी टुकड़े-टुकड़ों में। यह 'पदार्थ हत्या' सतत है।यह काम हर विषय दूसरे विषय के साथ लगातार करता रहता है, राजनीति, विधिपरकता स्वयें में सही हो सकती है, लेकिन पदार्थ के समाज में राजनीति गलत है, और राजनीति के आधार में पदार्थ का स्वतंत्र होना गलत है। उसे किसी न किसी विधि में आना ही होता है ऐसा राजनीतिज्ञयों का मानना है। अब आप देखिये की पदार्थ कैसे अपनी पदार्थाई स्वतन्त्रता के लिए अभिशप्त है और राजनीति अपने अहम के लिए, राजनीति कहती है कि हमसे बाहर वह वस्तु या पदार्थ नही रह सकता या रखा जा सकता है। यदि उसे बाहर किया गया तो मैं (राजनीति) स्वतः ही समाप्त हो जाऊँगी। राजनीति की यही अंतिम सीमा है, और ध्यान रहे प्रत्येक वस्तु, पाठ, पदार्थ सब की 'जातिनीति' (शरीरशक्ति) होती है। इसलिए इस सहकार रूप को उत्तर-आलोचना से ही समझा जा सकता है।

यहीं पर हम यह समझेंगे कि कोई गलत क्यों नहीं हैं। क्योंकि जिसकी शरीर शक्ति और जातिवातवरण कमजोर होता जाता है, वही शासन व समाज और कभी-कभी प्रकृति द्वारा भी पीछे की जाने लगती है, क्योंकि हम चौतरफा विकास में होने के साथ (तो हैं भी यहीं यह भी ध्यान रहे कि चौतरफा विकास पर्यावरण-वातवरण के आधार से निर्मित होता है, क्योंकि जैसे ही कोई साधन असाध्य होने लगता है दसरा साधन सासाध्यता हेतु निर्मित किया जाने लगता है) हम सतत होते है किन्तु रेखीय भी, यहीं रेखीयता हमें दसरे पाठों को गलत करने कराने के लिए अभिशप्त करती है, और इसकी अति गहरी समझ हमें न होने के कारण हम पाठों को मिटाते चलते है, मिटाने में कभी-कभी अपने पाठ की अधिक दिन तक प्रतीता व पदातिता बनी रहे के लिए भी हम प्रयास पाठ में पहले से 'जुता' व 'जुटा' चुके होते या करते रहते हैं, लेकिन यह आवश्यक नहीं की पदातिता तब तक चले ही या स्थिर रहे कि जैसी धारणा उसके प्रति हमने बना रखी है,और तब महान संभावना यह बनती है कि समाज में जितनी भी सामाजिक सांप्रदायिकतायेओं की निर्मिति होती है, वह कहीं न कहीं इसी समझ के कारण होती है।

इसलिए उत्तर-आलोचना सिद्धांतिकी मानती है कि (व्याख्या, समीक्षा, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, संरचनावाद, उत्तर-संरचनवाद, विखंडनवाद, उत्तर-आधुनिकतावाद, सांस्कृतिक भौतिकवाद, विमर्शवाद, जैव-रचना, नव्य-इतिहासवाद, भौतिकवाद, जैववाद, रसायनवाद, भूगोलवाद, निगमवाद, लोकवाद अभियंजना व शैलीवाद, राष्ट्रवाद, गाँधीवाद, बुद्धवाद, जैव-प्रौद्योगिकी, फासीवाद, शक्तिवाद, सत्तावाद, मानवतावाद, तकनीकिवाद, लोकवाद, आदि और भी जो वाद कथित समाज के अन्तः अस्तित्व में हों, उन सभी के आधार में इन समीकरणों, सूत्रों के सहारे किसी एक पाठ, बिन्द, पदार्थ, वस्तु आदि की आलोचना करनी चाहिये। तब जाकर किसी पाठ, बिन्द, वस्तु, पदार्थ, विधि, संघ, वर्ग, मीमांसा, दर्शन, विचार, नायक, खलनायक आदि कि वास्तविकता के होने की पूर्णवत सत्यता हमारे सम्मुख उपस्थित हो पाती है। जिसकी गैर-उपस्थिति और उपस्थिति के कुछ संकेत पहले से समाजाचार्यो व साहित्याचार्यो में दृष्टित होते हैं, जैसे कहा गया कि "यह आवश्यकता पड़ने पर ऐतिहासिक दृष्टि से भी उस पर विचार कर सकता है, नैतिक दृष्टि से भी विचार कर सकता है, सामाजिक दृष्टि से भी विचार कर सकता है और साहित्यिक दृष्टि से भी विचार कर सकता है।''1 ये संकेत जो हमें मिलते हैं यह साफ स्पष्ट करते हैं कि प्राचीन समय से पाठ की वास्तविक न्याय के लिए कई दृष्टियों से पाठ के खेलों को खोले जाने की आवश्यकता है। साथ ही जैसे मैंने पहले कहा यह कार्य उत्तर-आलोचना की निगरानी में ही संभव है, इस आधार में वाक्य संकेतक का भी प्राथमिक मतव्य इससे से मिलता है। हालाँकि बात वे खुल कर न कह सके। क्योंकि उस समय आलोचना के प्रति इतना बोध नहीं था।

निष्कर्ष : अतः आज यह कहा जा सकता है कि लेखक में यह प्रतिभा होनी चाहिए कि वह पाठ को कितने पाठों में खोल सकता है। (उसे किस विधि से किस सीमा तक किस होड में किस दावों के अनुसार व अनुकूलन में गलत किया जा सकता है या सही किया जा सकता है। पाठ, बिन्द, पदार्थ की वे सीमायिक जगहें दिखाना जहाँ से उन्हें गलत करने के लिए जबरन छीना जा सकता है या छीना जा रहा है व कभी-कभी एक पाठ या पंक्ति के माध्यम से दूसरे पाठ, विषय, समाज को घायल कर दिया गया होता है, फिर बाद में उसी पर नये पाठ के बीज बोये जाते हैं और गतित समाज के कुछ नये आयामों से उसे गलत या सही करने के सुराक या श्रोत मिलते रहते या बनाए जाते रहते हैं। सामाजिक राजनीति कहाँ, कैसे पाठ, वस्तु, बिन्द के गलत या सही होने के लिए जगहें देने के इशारे देती है। कौन सी विधि कहाँ पर पाठ में उलट -फेर के लिए किसी पाठक-रचनाकार को लेखन पाठन समय-स्वप्न में विधि बताती है। इसकी वास्तविकता उत्तर-आलोचना से ही संभव है। पूरी, अधूरी व वैज्ञानिक आलोचना के वास्तविकता का रूप है 'उत्तर-आलोचनावाद' विशेषण, उत्तर-आलोचनावाद आलोचना की प्रक्रिया को पूर्ण कराता है। क्योंकि आलोचक कभी-कभी पाठ के प्रति व्यक्तिगत बोलने लगते हैं "आलोचक यदि किसी कृति के विश्लेषण के संदर्भ में अपनी प्रतिबद्ध विचारधारा का आरोपण करता है तो निश्चित ही, कृति की व्याख्या दिशाहीनता की ओर जा सकती है।''[2] साथ ही कि "आलोचक केवल कृति का पाठक ही नहीं होता वह कृति के सम्पूर्ण अन्तर्जगत को खँगालता है और इस प्रक्रिया के लिए उसे इतिहास, परम्परा, राजनीति, मनोविज्ञान, सृजनप्रक्रिया, साहित्यशास्त्र आदि-आदि न जाने कितनी ज्ञानात्मक धाराओं का हृदयगम करना पड़ता है।''3 ऐसा न होने पर आलोचना अपूर्ण रह जाती है। इसलिए वह पूर्ण करने की एक प्रयोगिक आलोचना विधि का नाम है। सकल वास्तविकता जानने के लिए यह समाज में किसी भी व्यक्ति, संस्था, संस्थान, संघ, समाज बिन्द, पाठ, पदार्थ, वस्तु, शैली, विषय, भाग, प्राणी आदि पर स्थापित व कसी -की जा सकती है। इसका खेल साहित्य में जितना महत्वपूर्ण है। उससे अधिक समाज और राजनीतिक विधियों के प्रति जो नागरिक-वस्तुओं पर लाद व लागू कर दी जाती हैं जो एक प्रकार से राजनीति और सामाजिक अत्याचार हैं, राजनीति के अत्याचारों को इसी सिद्धांतिकी से अधिक गहरे समझा जा सकता हैं। राजनीति की तानाशाही की रेखाओं को इसी से पकड़ा जा सकता है और चाहें तो समाज में फैली आपराधिक सारणियों को रेखांकित व चिन्हित किया जा सकता है, के लिए बहुत आवश्यक है।) जबकि चाहिए यह कि उपरोक्त सभी सिद्धांतिकियों के आधार में एक 'पाठ', वस्तु, बिन्द, पदार्थ आदि को खोला जाय। "इसीलिए आलोचक का कर्तव्य हो जाता है, वह स्वयं उस यथार्थ को लेखक से भी ज्यादा समझे और यथार्थ के संबन्ध में लेखक जो कुछ कहता है – उसे प्रामाणिक न मान ले।''4 इतना ही नहीं बच्चन सिंह जी भी ऐसे ही 'आलोचना की वास्तविकता' के प्रति बहुत कुछ भावार्थ में लिए हये कहते हैं कि "आज की आलोचना के लिए सबसे जरूरी है, आधुनिक मानवीय स्थिति (ह्यमन सिचुएशन) के संदर्भ में संरचना का विश्लेषण और मूल्यांकन। पुरानी आलोचना पद्धतियाँ जिस सीमा तक हमारी सहायता कर सकती हैं, उस सीमा तक किंचित परिवर्तन के साथ हमें ग्राह्य हैं।''5 अर्थात वही कि आज के आलोचका को चाहिए कि वह सम्पूर्ण संसार की सिद्धांतिकियों व साथ ही आने वाले संभावित विभागीय-वातावरणीय दृतियों के दर्शनाधार में पाठ को खोले अनन्य विधियों में उसे पढ़ें देखे व उसे पूर्ण बनाए।

****

संदर्भ सूची –

1. दास, श्यामसुन्दर प्रथम (वाणी) संस्करण – 2014, साहित्यालोचन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 176
2. सिंह, योगेन्द्र प्रताप, प्रथम संस्करण - 2008, हिन्दी आलोचना : इतिहास और सिद्धांत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 58
3. वही, पृ. 58
4. वही, पृ.194
5. वही, पृ. 221